॥ भूमिका ॥

श्रीयुत योगीन्द्रदेव मुनि कृत प्राकृत दोहा बंध योगसार नाम ग्रंथ जो साक्षात् मोक्ष सोपान है परन्तु बोली अड़बड़ होने से सटीक होनेपर भी साधारण लोग शब्दार्थ समझ नहीं सकते और जब अर्थ समझमें नहीं आवे तब उसके पढ़ने सुनने यादि करने में रुचि नहीं होती इस त्रुटिके दूर करने को मैंने भाषा दोहों को रचकर सरल टीका भी करदिया कि अल्प बुद्धि भी समझसके यह ग्रंथ नित्यपाठ करने और स्मृति रखने योग्य है हे भव्य जीवो ! अवश्य इस ग्रंथकी धारणा राखो यह सार्थक स्वानुभव दर्पण है !!!

सर्वसाधर्मी भाइयों का दास

मुन्शी नाथूराम

कटनी मुड़वारा

❋ ॐ नमः सिद्धम् ❋

श्रीस्वानुभवदर्पण सटीक प्रारंभ्यते

—०००❋०००—

❋ दोहा ❋

निर्मलध्यान लगायके कर्म कलंक जलाय। भये सिद्ध परमात्मा बन्दों मन बच काय ॥ १ ॥

जिन ने शुक्लध्यान लगा करके मोहनी, ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय ये चारघातिया कर्म और वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ये चार अघातिया कर्मों को भस्म किया ये कर्म जो कलंक रूप आत्मा से तन्मय थे तिनके दूर होतेही आत्मा शुद्धसिद्ध अवस्था को प्राप्तिहुआ सो सिद्ध परमात्मा को मैं मन वचन शरीर से बन्दना करताहूं ॥

चार घातिया घाति विधि लिये अनंत चतुष्ट। तिन जिनवरको प्रणमिके करोंकाव्य कुछ सुष्ट ॥ २ ॥

चार घातिया कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनी, अंतरायको क्षय करके अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंत सुख, अनन्त वीर्य जिनने प्राप्त किया तिन जिनेंद्र को नमस्कारकर कुछ सुन्दर हितकारी काव्य करताहूं॥

भव दुखसे डर मोक्षहित निज सम्बोध निमित्त । अष्टोत्तर शत र चतहों दोहा दृढ़कर चित्त ॥ ३ ॥

जन्मन मरण जरादि भव दुःखों से डरकर और मोक्ष की प्राप्ति के लिये अपने को सम्बोधन हेतु एकसौ आठ भाषा दोहा स्थिरमन कर रचताहूं ॥

जीवकाल संसार ये कहे अनादि अनंत । गहि मिथ्या श्रद्धाणजिय भ्रमे न सुक्ख लहंत ॥ ४ ॥

जीव अनादि से है अर्थात् नवीन नहीं उपजा है । और काल (समय) भी अनादि से है । और तैसे ही संसार भी अनादि काल से है । और तीनों अनन्त काल कहिए सदा रहेंगे अर्थात् नष्ट न होवेंगे। तहां आत्मा अहंकार ममकार को मोहवश ग्रहणकर

मिथ्या श्रद्धाण लिये संसार में भटकता है सत्य आत्म सुखनहीं पाता है॥

जो चउगति दुःखसे डरे तो तज सब परभाव। कर शुद्धात्म चिंतवन शिव सुख यही उपाव॥ ५॥

हे जीवजो तू नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्यगति और देवगति के जन्मन मरण दुःखों से डरता है तो समस्त परभाव (उपाधिक भाव) छोड़दे और कर्म कलंक रहित शुद्ध आत्मसुरूप का चिंतवन कर यही मोक्ष सुख मिलने को उपाय है॥

त्रिविधि आत्मा जानके तज बहिरात्म भाव। अन्तरात्मा होयकर परमात्मा को ध्याव॥ ६॥

बहिरात्मा, अन्तरात्मा,परमात्मा ऐसे तीन प्रकार के आत्मा हैं। तिनको जान करके बहिरातमापन छोड़कर अन्तरात्मा होके परमातमाका ध्यानकर॥

मिथ्या दर्शन बश फँसे अहंकार

ममकार । जिनवर बहिरात्म कहे सो भ्रमि हैं संसार ॥ ७ ॥

मिथ्या दर्शन कहिए शरीर जड़ ताहि निजरूप मान अहंकार करना स्त्री पुत्रादि व घर धनादि में ममकार भाव करना सो मिथ्या श्रद्धाण है ऐसे जीवों को जिनेंद्र ने बहिरात्मा कहाहै ।सो बहिरात्मा संसार में भ्रमण करेंगे ॥

निजपरका अनुभव करे पर तज ध्यावे आप । अन्तरात्मा जीवसो नाश करे त्रय ताप ॥ ८ ॥

जो आतमा निजरूप और पुद्गलादिपर रूपका विचार करके शरीरादि परसे ममत्वभाव छोड़े है और ज्ञानदर्शनमय निज चेतन्य रूपको ध्यावेहै । सोजीव अन्तरात्मा अर्थात् आत्मज्ञानीहै । जन्म जरा मरण रूप तीन प्रकार का खेद तिसको दूरकरेहै नाशकरेहै

निर्मल निकल जिनेंद्र शिव सिद्ध विष्णु बुध सन्त । परमात्म केनाम जिन भाषे एम अनन्त ॥ ६ ॥

कर्म मलदूर होनेसे निर्मल, और पुद्गलीक शरीर छूटने से निकल, और कर्म शत्रुओं को जीतने से जिनेंद्र, जन्मन मरण मिट जानेसे शिव, अनन्त ज्ञान दर्शनकर सर्वव्यापी होने से विष्णु । बिन सहायके जाननेसे बुध । सदा विद्यमान रहनेसे सन्त । ऐसे गुणों कर परमात्मा के अनेक नाम हैं सो जिनेंद्र देवने कहेहैं

अहंकार भवमें करे तन धन जन ममकार । सो बहिरात्म भव भ्रमे जिनवर कहो उचार ॥ १० ॥

भव जो जन्म तिसमें अहंकार करे है कहै है कि मैं देव हूं मैं मनुष्य हूं मैं तिर्यंच हूं मैं नारकी हूं तैसेही स्त्री पुत्र धन धान्यादि में ममकार करता है कि ये मेरे हैं । यह नहीं विचारताहै कि मैं इनसे भिन्नहूं इनका संयोग कर्मोदय से हुआ है सो अवधि बीते विनश जायगा सो ऐसे मोही जीवों को जिनेंद्रने बहिरात्मा कहा है ॥

देहादिक पुद्गल मयी सो जड़ हैं पर जान । ज्ञाताद्दष्टा आपतू चेतन निज पहिचान ॥ ११ ॥

अब बहिरात्मा जीवोंको गुरु उपदेश करते हैं कि ये देहादिक पुद्गल रूप (पूरनेगलने वाले) हैं जड़ज्ञान रहितहैं वर्ण गन्ध रस स्पर्श गुण युक्तहैं । और तू चेतन्य आत्माहै देखने जानने विचारनेवाला है सो अपने रूपकी पहिचानकर परभावों से सम्बन्ध छोड़ ॥

आप आपने रूपको जाने सो शिव होइ । पर मैं अपनी कल्पना करे भ्रमे जग सोइ ॥ १२ ॥

जो आत्माको आत्मा जानेगा सोही मुक्त होगा । और जो पर पुद्गलादि द्रव्यों में आत्मा आत्मा मानेगा अर्थात् पर्यायोंको अपना रूप मानेगा सो संसारमेंही भटकेगा बारबार जन्मन मरण करेगा मुक्त न होवेगा॥

बिन इच्छा शुचि तप करे लखे आपगुण आप । निश्चय पावे परम पद फिर न तपे भव ताप ॥ १३ ॥

संसारिक विषय भोगों की बांछा रहित जो निर्दोष तप करता है । और अपने ज्ञान दर्शनादि गुणों को देखता विचारता है । सो निश्चय परम पद जो मोक्ष

ताहि प्राप्ति करता है। फिर जन्म जरा मरण तपन में नहीं तपता है॥

बन्ध बिभाव प्रसादहो शिव स्वभावसे जान। बन्ध मोक्ष परणामसे कारण और न आन॥ १४॥

बन्ध है सो काम क्रोधादि बिभावों से होता है। और मोक्ष है सो परम वीतराग रूप जिनभावों से होय है। इससे विदित हुआ कि बन्ध मोक्ष दोनों के कारण सराग वीतराग परणाम ही हैं अन्य कोई कारण नहीं है

स्वात्मके जाने विना करे पुण्य बहु दान। तदपि भ्रमे संसारमें मुक्त न होय निदान॥ १५॥

जो अपने चिदानन्द रूपको नहीं जानता है। और बहुत पुण्यदानही करता है उन्हीं को मोक्ष देनेवाले समझताहै सो मिथ्या दृष्टी संसारही में भ्रमण (जन्मन मरण) करता है आखिरकार मोक्ष नहीं पाता है। कारण कि पुण्य दानसे स्वर्गादिक सुखही मिल सक्ते हैं मुक्ति सुख नहीं। सो स्वर्ग भी संसारही में है॥

आत्मज्ञान श्रद्धाणही दाता शिव ना आन । द्विविधि धर्म व्यवहार पथ निश्चय आत्म ज्ञान ॥ १६ ॥

आत्मस्वरूप का ज्ञान व दृढ़ता से श्रद्धाणही मुक्ति का देनेवाला है अन्य मिथ्या ज्ञान श्रद्धाण आचरण मुक्ति देनेवाले नहीं हैं । और श्रावक धर्म यती का धर्मभी व्यवहार मार्ग है निश्चयकर आत्म ज्ञानादि ही मुक्ति सुखदाता हैं । विना सम्यग्ज्ञान के मुनिका चारित्र व्यवहार मात्रही है ॥

गुणस्थान वा मार्गणा उपादेय व्यवहार । निश्चय आत्मज्ञानही परमेष्टी पद कार ॥ १७॥

मिथ्यात्व १ सास्वादन २ मिश्र ३ अव्रतसम्यक्त्व ४ देशव्रत ५ प्रमत्त ६ अप्रमत्त ७ अपूर्वकरण ८ अनुवृत्यकरण ९ सूक्ष्मलोभ १० उपशांति कषाय ११ क्षीण कषाय १२ सयोग केवली १३ अयोग केवली १४ ये १४ गुणस्थान और चार गति पंच इंद्रिय छकाय पंद्रहयोग तीन वेद चार या पच्चीस

कषाय आठज्ञान सात संयम चार दर्शन छःलेश्या दो भव्य अभव्य छः सम्यक्त्व (श्रद्धाण) दोसंज्ञी असंगी दो आहारक अनाहारक ऐसे चौदह मार्गना यह सब जीवका सरूप व्यवहार नयकर जानना कि मुक्ति दाता है वास्तव में आत्मज्ञान ही उत्कृष्ट पद मुक्तिका देनेवालाहै। सम्यग्ज्ञान होनेपरही गुणस्थान मार्गना का ज्ञान शिव दायक है और सम्यक्त्व के छःभेद किये तहां ऐसा जानना असल में तो उपशम क्षयोपशम क्षायक तीन प्रकार ही सम्यक्त्वहै और मिथ्यात्व सास्वादन मिश्र श्रद्धाण है सो जिन जीवोंके ऐसाही दृढ़ बिश्वास है कि हम सम्यक्त्व श्रद्धाणी हैं तिनके दृढ़विश्वास की अपेक्षा इन्हें सम्यक्त्व कहा है क्योंकि मिथ्यादृष्टी को दृढ़श्रद्धाण (विश्वास) न होता तो वे उसे छोड़ सम्यक्त्व श्रद्धाणकी खोज अवश्य करते जो हिंसामें धर्म मानते हैं उनको उसका श्रद्धाण भी दृढ़है नहीं तो पाप जान छोड़देते ॥

ग्रेह कार्य यद्यपि करें तदपि स्वानुभव दक्ष। ध्यावें सदा जिनेशपद होंय मुक्त प्रत्यक्ष ॥ १८ ॥

जो सम्यग्दृष्टी यद्यपि घरके कार्य व्यहार करते हैं परन्तु तो भी आत्मरूपके जानने विचारने में कुशल हैं और जिनेंद्रदेव के चरणोंका ध्यान करते हैं वे प्रगटपने मोक्ष पाते हैं॥

जिन सुमरो जिन चिंतवो जिन ध्यावो मन शुद्ध। लहो परम पद क्षणकमें होकरके प्रति बुद्ध॥१६॥

जिनेंद्र देवके गुणों का स्मर्ण करना कि कौन गुण कब २ जिनेंद्र के होते हैं और तिन्होंके गुणों का चिंतवन करना कि ये गुण कैसे २ प्रगट होते हैं और जिनेंद्रदेवका ध्यानकरो शुद्धमनसे अर्थात् अभिरुचिसे तो शीघ्रही प्रतिबुद्ध (समझदार)होकरके परमपद जो मोक्ष सो प्राप्ति करो॥

जिनवर अरु शुद्धात्ममें किंचित् भेद न जान। येही कारण मोक्षके ध्यावो श्रद्धाठान॥२०॥

अरिहन्त सकल परमात्मामें और शुद्धआत्मा जो परमात्मा तिसमें कुछ भी अन्तर नहीं है जैसे सिद्ध नि-

कल परमात्मा शरीर रहितहैं तैसेही अरिहन्त सकल परमात्मा शरीर सहितहैं दोनोंके गुणों में कुछभी अन्तर नहीं केवल आयु कर्म पूर्ण भये शरीर छोड़नाही शेष है शेष गुण सुख तुल्य हैं॥ इससे ये दोनोंही मोक्ष के कारण हैं। तिनको श्रद्धाण पूर्वक ध्यावो॥

जो जिनसो आत्म लखो निश्चय भेद न रंच। यही सार सिद्धान्त का छोड़ो सर्व प्रपंच॥ २१॥

जो जिनेन्द्र देव सर्वज्ञ सर्व दर्शी हैं। सो शक्ति अपेक्षा अन्य आत्मा हैं निश्चय नयकर रंचमात्र भेद नहीं है सिद्धान्त का यही सार है और सर्व कथन जो प्रपंच मात्र है सो छोड़ो व्यक्त अपेक्षा कर्मों से शक्ति रुकी है तिन कर्मों के नाश का उद्यम करो॥

आत्म परमात्म विषैं शक्ति व्यक्त गुण भेद। नातर उभय समान हैं कर निश्चय तज खेद॥ २२॥

आत्मा में शक्ति अपेक्षा केवलज्ञानादि गुण प्रगट होने की शक्ति है परन्तु वर्त्तमान दशा में पूर्वोक्त

गुण व्यक्त अर्थात् प्रगट नहीं हैं और सकल व नि- कल परमात्मा अर्हन्त सिद्ध में ये गुण व्यक्त अर्थात् प्रगट हैं यही दोनों में भेद है नहीं तो दोनों समान हैं ऐसा निश्चय करो और व्यर्थ भ्रममें पड़ खेद मतकरो प्रयत्न करो और खेदको छोड़ो ॥

अगणित शुद्ध प्रदेशयुत लोका- काशप्रमाण। सो शुद्धात्मअनुभवो ध्यावो हो कल्याण ॥ २३ ॥

असंख्याते निर्मल प्रदेश सहित शक्ति अपेक्षा लोक प्रमाण है उस शुद्ध आत्मा का विचार पूर्वक खोजकरो। उसका ध्यानकरने से तुम्हारा भलाहोयगा

निश्चय लोकप्रमाणहै तनुप्रमा- ण व्यवहार। ऐसे आत्म अनुभवो सो पावे भवपार ॥ २४ ॥

आत्मा निश्चय नयकर शक्ति अपेक्षा लोक प्रमाणहै और व्यवहार नयकर व्यक्तपने देहप्रमाण रहताहै। इसप्रकार जो आत्माका चिंतवन करताहै सोअवसर पाय शक्तिप्रगटकर संसार से पार (मुक्त) होताहै॥

चौरासी लख योनिमें भ्रमो सु-काल अनन्त। सम्यक् रत्नत्रय विना लिया न भवका अन्त॥ २५॥

पृथ्वी काय सातलाख जलकाय सातलाख अग्नि काय सातलाख पवनकाय सातलाख नित्य निगोद वनस्पति काय सातलाख इतर निगोद वनस्पतिकाय सातलाख प्रत्येक वनस्पतिकाय दशलाख दो इन्द्री दोलाख तेइंद्री दोलाख चौइंद्री दोलाख तिर्यंच पंचेंद्री चारलाख ऐसे बासठलाख तिर्यं योनि और देव चार लाख नारकी चारलाख मनुष्य चौदहलाख सर्व चौरासीलाख योनिमें जन्मन मरण करते२ अनन्तकाल भटका परन्तु सत्यज्ञान श्रद्धाण आचरण रूपसम्यक् रत्नत्रय विना जन्मन मरण रूप भवका अन्तन पाया॥

शुद्धात्म हो शिव चहै तो कर अनुभव आप। स्वात्म जाने होयगा मुक्त मिटे सन्ताप॥ २६॥

हे जीव जो तू निर्मल सिद्धपदको चाहता है। तो अपने स्वरूपका विचारकर कि तू कैसी शक्तिवाला

है और किस कारणसे व्यर्थ कष्ट भोगता है । जब तू निज स्वरूपको जानेगा और अपनी शक्ति सम्हा लेगा तब तुरंत कर्मकाट मुक्तहोगा और संताप मिटेगा

जबतक आतम ज्ञान ना मिथ्या क्रिया कलाप । भटको तीनों लोक में शिवसुख लहो न आप ॥ २७॥

हे जीव जबतक तुझे अपने रूप का ज्ञान नहीं अपनी शक्ति की सम्हाल नहीं । तबतक तेरे सर्व क्रिया कलाप मिथ्या हैं ॥ कितनाही जप तप संयम कर व्यर्थ हैं । तू तीनो लोक में भटकता फिर परन्तु कहीं छुटकारा नहीं पावेगा अर्थात् मुक्त नहीं होगा इसी से स्वाधीन सुख भी नहीं मिलेगा ॥

ध्यावन योग्य त्रिलोकमें जिनसो आतम जान । निश्चय नय जिन वर कहैं यामें भ्रांति न ठान ॥ २८ ॥

हे जीव ऊर्ध्व अधः मध्य तीनोंलोक में ध्यान करने योग्य विचारने योग्य जिनेंद्र हैं तैसेही आत्मा है का-रण कि जिनेंद्र भी चेतन्य आत्माही सर्व गुणपूर्ण परमात्मा हुए हैं यह शक्ति आत्मामेंही है धातु पा-

षाणादि में जिनेंद्र होनेकी शक्ति कदापि नहींहै नि-श्चय नयकर जिनेंद्रने स्वगुण विचारही मोक्षका द्वारा कहा है इसमें कुछभी भ्रांति नहीं है ॥

व्रत तप संयम मूल गुण मूढ़ कहै शिव हेतु। पर स्वात्म अनुभव बि-ना पचे न शिवपद लेतु ॥ २६ ॥

हिंसा चोरी असत्य कुशील परिग्रह इनपंचपापोंका कुछ२ त्याग सो पंच अणुव्रत और दिग्व्रत देशव्रत अनर्थदंडत्याग ये तीन गुणव्रत हैं। और सामायिक प्रोषधोपवास भोगोपभोग परिमाण अतिथि संविभा-ग ये चार शिक्षाव्रत हैं ऐसे बारह व्रत ॥ और अन सन १ ऊनोदर २ व्रतपरिसंख्या ३ रसपरित्याग ४ विव्यक्तशैयासन ५ कायक्लेश ये६ वाह्यतप और प्राय श्चित १ विनय २ वैयावृत्य ३ स्वाध्याय ४ व्युत्सर्ग ध्यान यह छः प्रकार अंतरंग तप ऐसे बारह प्रकार तप और पंच इंद्रिय छठवें मनका निरोध सो ६ प्र-कार इंद्रिय संयम और छः कायके स्थावर जंघम जीवोंकी रक्षा सो प्राण संयम और ऊपर कहे पंच पापोंका सर्वथा त्याग सो पंच महाव्रत और ईर्यास

मिति १ भाषा समिति २ ईषणा समिति ३ आदान निक्षेपणा समिति ४ प्रतिस्थापना समिति ऐसे ५ प्रकार समिति और पांचों इंद्रियोंको विषयोंसे रोककर निज वशकरना औरसामायिक १ वंदना २ स्तवन३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ ये६ आवश्यक कर्म और भूमिशयन स्नान त्याग केशलुंच वस्त्रत्याग, दंतवनत्याग, खड़े पानपात्र आहार, लघु एकबार आहार येअट्ठाईस मूलगुण सो व्यवहार शुद्धता को हैं सो आत्म ज्ञानीको मुक्ति के कारण हैं परन्तु जो आत्मज्ञान शून्य केवलइनहीको मोक्षके हेतु (कारण) मानते जानतेहैं सो मूर्ख हैं । आत्मज्ञान बिना नाना प्रकार क्रियाकलाप कर व्यर्थ पचें हैं परंतु मोक्ष नहीं पावें हैं ॥

जो शुद्धात्म अनुभवे व्रत संयम संयुक्त । कहैं जिनेश्वर जीव सो निश्चय पावे मुक्त ॥ ३० ॥

जो जीव शुद्धात्म जो कर्ममल रहित आत्मा को विचारे चिंतवन करेहै । सो निश्चय मोक्ष पावे है ऐसे जिनेंद्र कहते हैं ॥

लहै पुण्य से स्वर्ग सुख नर्क पड़े कर पाप। पुण्य पाप तज आपमें रमैं लहै शिव आप॥ ३१॥

जो जीव भवसुख की बांछाकर पुण्य करताहै सो स्वर्गसुख पाता है॥ और जो पाप कर्म करता है सो नर्कमें पड़ताहै। और जो पुण्य पाप दोनोंको संसार वासका कारण जान त्यागताहै और आत्म स्वरूप में लीनहो रमनकरताहै। सो आत्मा मोक्षपदपाताहै॥

वृत तप संयम शील जिय शिव कारण व्यवहार। निश्चय कारण मोक्षको आतम अनुभवसार॥३२॥

हे जीव पूर्वोक्त व्रत तप संमय और शील ये व्यवहार नयकर मोक्षके कारण कहे हैं परन्तु निश्चय नयकर आत्मा का अनुभव (जानना) ही मोक्ष को कारण है॥

परस्व ग्रहे निज भाव को त्याग करे परभाव। सो शिव पावे जिन कहें वृथा कुअन्य उपाव॥ ३३॥

हे जीव जो स्वपर भावोंका अनुभव कर निज भावको परीक्षा कर ग्रहण करे और परभावोंको छोड़े है। जिनेंद्रने ऐसा कहा है कि वही मोक्ष पावे है ॥ वृथ्या नाना प्रकार कुतर्क विचाररूप उपाववाला दूसरा नहीं पाता है ॥

सप्त तत्त्व षट द्रव्य नव पदार्थ पंच है काय । सो यथार्थ व्यवहार युत ठीक करो मन लाय ॥ ३४ ॥

जीव अजीव आश्रव बन्ध सम्बर निर्जरा मोक्ष ये साततत्त्व और इन्हीं में पुण्य पाप दो मिलाने से नव पदार्थ और जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छः द्रव्य इनमें से काल को छोड़ शेष पांचो काय हैं इनको निश्चय व्यवहार दोनों नयकर भलीभांति मन लगाय ठीक करो अर्थात् निर्णय करो ॥

एक सचेतन जीव सब और अचेतन जान । सो चेतन ध्यावो सदा लहो तुरत शिव थान ॥ ३५ ॥

इन सब तत्त्वपदार्थ द्रव्यकाय में से एक जीवतत्त्व जीवपदार्थ जीवद्रव्य जीव अस्तिकाय तो चेतना स-

हित हैं शेष और सब अचैतन्य जड़ हैं इससे चेतन्य जीव ही उपादेय है उसीका ध्याओ (विचारो) तो शीघ्र मोक्ष पाओगे ॥

जो शुद्धात्म अनुभवे त्याग उपाधिक भाव। शीघ्र मुक्ति पदसो लहै यों जिनवर दर्शाव ॥ ३६ ॥

हे जीव जो कर्म कलंक से भिन्न शुद्ध आत्मा का अनुभव करताहै और कामक्रोध छल लोभ मद मोहादिक भावों को उपाधिक भाव जान छोड़ता है सो शीघ्रही मुक्तिपाताहै। ऐसा जिनेंद्रनेदिखाया है॥

जाने जीव अजीवजो भेद विज्ञान विचार। कहो कहत जिन मुनि सदा सो पावे भवपार ॥ ३७ ॥

हे जीव जो चेतन्य आत्माको ज्ञानदर्शनादि गुण युक्त और वर्णगंध रस स्पर्शादि गुणयुक्त शरीरादि अजीव पदार्थों को भेद विज्ञान के द्वारा विचारता जानता है। सोही भव जो संसार तिसके पार होता है ऐसा जिनेंद्रने वा आचार्योंने कहाहै। और ऐसेही सदैव कहते हैं ॥

चेतनही सर्वज्ञहै अन्य अजीवन कोइ। कहा कहत जिन मुनि यही निश्चय जानो सोइ ॥ ३८ ॥

हे जीव चेतन्य आत्माही सर्वज्ञ है । अन्य शरीरादि जड़ पदार्थ सर्वज्ञ नहीं होसकते हैं ऐसा अरिहंत व आचार्य ने कहा है और ऐसाही सदा कहते हैं ऐसा निश्चय जानो ॥

केहि साधों अर्चौं ठगों करों बैर वा प्रीत । प्रगट गुप्त सब ठां लखों सम गुण चेतन मीत ॥ ३९ ॥

मैं किसका साधनकरों किसका पूजन करों किस को ठगों किससे बैरकरों किससे प्रीतिकरों प्रगटपने अरिहंतादि वा गुप्तपने सामान्य जीवसबही ज्ञानदर्शन चेतना गुणके धारकही सर्वत्र दीखतेहैं अथवा खुले स्थानों में उजालेमें छिपे स्थानोंमें अंधकारमें जहां२ जीव हैं सब ज्ञानादि गुणके धारकहैं इससे हे मित्र किस के साथ ऊपर लिखा व्यवहार कियाजावे ॥

तब तक भ्रमे कुतीर्थ जिय करे

धूर्तता ढंग। जब तक सुगुरु मिले नहीं पड़ो कुगुरु के संग ॥ ४० ॥

यह आत्मा तबतक ही कुतीर्थों में भटकता फिरता है और छल कपट के ढंग बनाता है। जबतक सुगुरु से भेट नहींहुई कुगुरु के संगमें पड़ा है ॥

तीर्थ दिवालय देवना देह दिवालय देव। जिन बाणी गुरु यों कहो निश्चय जानो एव ॥ ४१ ॥

हेजीव निर्वाण क्षेत्रादितीर्थ और देवालय (मंदिर) में देव कहिए अरहंतादि पूज्य पुरुष नहीं हैं। शरीर रूप मंदिर में आत्मा पूज्यदेव है कारण कि आत्मा ज्ञानादि गुणका धारकहै मुक्त होने को शक्ति रखताहै और प्रतिमा जड़है ज्ञानादि गुण रहित हैं उपदेशादि देने समर्थ नहीं हैं। ऐसा जिनवाणी और गुरु ऐसा कहते हैं ऐसा निश्चय जानो ॥

तन मन्दिर में जीव जिन मंदिर मूर्ति न देव। सिद्धिबने भिक्षाहि भ्रमे सन्मुख हांसी एव ॥ ४२ ॥

शरीर रूप जिन मंदिरमें आत्मारूप जिन देव हैं। और धातु पाषाणकी मूर्ति जिनदेव नहीं हैं न प्रतिमा का मंदिर जिन मंदिर है। जैसे सिद्धबने और भीख मांग पेटपाले तो यह मुंहपर हास्य कराना है। तैसे ही जड़पदार्थों को चेतन्य पूजे तो हास्य कराना है॥

मूढ़ दिवालय देवना मूर्ति चित्र नादेव। तन मंदिरमें देव जिय ज्ञा-नी जाने भेव ॥ ४३ ॥

हे मूर्ख देवालय में देव नहीं हैं मूर्ति हैं चित्र हैं सो देव नहीं हैं न होसकते हैं शरीररूप मन्दिर में आ-त्मारूप देव है सोही पूज्य है इसका भेद ज्ञानीही जानते अज्ञानी नहीं जानते हैं॥

तीर्थ दिवालय देव जिनयों भाषैं सब मूढ़। तन मंदिर जिन देव जिय ज्ञानी जाने गूढ़ ॥ ४४ ॥

निर्वाण क्षेत्रादि तीर्थों में वा मंदिरों में जो मूर्त्तें हैं उनको सर्व मूर्ख देव कहते हैं कि ये अमुक २ देवहैं परंतु शरीररूप मंदिर में जो आत्मारूप देव व्राजमान हैं यह गूढ़भेद ज्ञानी हैं सो ही जानते हैं॥ कारण

कि मंदिरों में जो मूर्तें रखीगई हैं उन से यह लाभ है कि उनको देख आसन की दृढ़ता व वीतराग अवस्था का चित्र चित्त में खिचता है इसीलिये उन्हें झाड़ पोंछ धोयमांज सुन्दर रखना कहाहै यह गूढ़ रहस्य ज्ञानवान ही जानते हैं ॥

जन्म मरण रुजसे डरे धर्म महौषधि पीव। अविनाशी तन ज्ञान मय पाय सुखीहो जीव॥ ४५॥

हे जीव जो तू जन्मन मरण रोगसे भय खाता है तो धर्मरूप महा औषधिपी। जिससे ज्ञान मय ऐसा अविनाशी देहपावे कि जिसका कभी भी नाश न होवे और जिसको पाय सदा सुखी रहै॥

शास्त्रपढ़ें बांचें बसें मठमें लुंचें केश। पिछी कमंडल के रखें ज्ञान न तो वृष लेश॥ ४६॥

शास्त्रोंको पढ़ने से बांचने से मठोंमें बसने से केश लुंच करने से पिछी कमंडल रखने से क्या यदि हृदय में आतमज्ञान नहीं है तो उपरोक्त कार्यों से रंचमात्र धर्म न जानना॥

राग द्वैष परिग्रह तजे करे स्वपर पहिचान । तोउपरोक्त क्रिया करें हो निश्चय निर्वाण ॥ ४७ ॥

हे जीव जो रागद्वैष उपाधिक भाव और परिग्रह छोड़े आत्म अनात्म की पहिचान करे तो पीछी कमंडल रखना शास्त्र पढ़ना आदि ऊपर कही क्रिया करने से निस्सन्देह जीवमुक्त होता है ॥

आयु गले मनना गले इच्छाशा न गलन्त । तृष्णा मोह सदा बढ़े या से भव भटकन्त ॥ ४८ ॥

हे जीव दिनपरदिन आयु घटती जाती है । परंतु मनकी उमंग नहीं घटती है प्रत्येक वस्तुकी इच्छा और आशा नहीं घटती है । और तृष्णा तथा प्रीति बढ़तीही जाती है । इसीसे संसार में वार २ जन्म धरने को चारोंगति में भ्रमण करता है ॥

ज्यों मन विषयों में रमे त्यों हो आत्म लीन । क्षणमें शिव सम्पति वरे क्यों भव भ्रमे नवीन ॥ ४९ ॥

हे जीव जैसे मन पंच इंद्रियों के विषयों में रमता है तैसेही आत्म सुरूपके विचार में रमे तो क्षणमात्र में मुक्ति लक्ष्मी प्राप्ति होवे। और फिर नवीन २ भव धरने को क्यों भटकना पड़े ॥

मल घट सम अति मलिन तन निर्मल आत्म हंस। कर ऐसा श्र-द्धाण तू नशे कर्मका बंश ॥ ५० ॥

हेजीव जैसे मैले से बनाहुआ घड़ा और मलसेही भरा महा मलिन होताहै। तैसेही यह शरीर रजवीर्य से बनाहै रजसे रक्तमान्स मेध और वीर्य से हाड़ नशें बसा वीर्य बनता है और मलमूत्र खखार रहंट ठेंठ कीचड़ पसेव आदिसे भरा महामलिनहै तिसमें जो आतमा कैद है अत्यन्त निर्मल है ज्ञानादि गुणोंकर युक्त है। तू ऐसा निश्चय श्रद्धाण कर तो कर्मोंका वंश मिटे और मोक्षपावे ॥

व्यवहारक धंधे फंसे बहुधा जग के जीव। आत्म हितकी सुधि नहीं यासे भ्रमत सदीव ॥ ५१ ॥

हेजीव लेनदेन सेवा चाकरी पशुपालन खेती लिखा पढ़ी शस्त्र विद्या हस्तकला आदि अनेक व्यवहारक धंधे हैं तिनही में जीव वहुत करके फंसे रहते हैं॥ कोई पेटके कोई लक्ष्मीके दासबने हैं कोई कुविसन में रतहैं ऐसी संसारके जीवोंकी दशा है आत्म हित की तनकभी सुधि नहीं है इसीसे बराबर जन्मन मरण होता ही रहता है सदा भव भ्रमण करताहै॥

यद्यपि शास्त्र पढ़ें कुधी तदपि मूढ़ शिर ताज । चेत हिताहितका नहीं लहैं न शिवपुर राज॥ ५२॥

हेजीव बहुतसे कुबुद्धी यद्यपि अनेक शास्त्र पढ़ते हैं कोई२सुनतेहैं परंतु तोभी मूर्खोंके शिरोमणिही रहते हैं कारण जिन को अपने हित अनहित का विचार नहीं है सो मोक्ष सुख नहीं पाय सकते हैं॥

इंद्रिनसे मन भिन्नकरमतबहु पूछे और । रागादिक फैलावतज आप लाभहो दौर॥ ५३॥

हेजीव इंद्रियों के मेलसे मन को भिन्नकर ये इंद्रियां मनको अपने२विषयोंमें रमाती हैं और बहुत पूछताछ

कुछ न कर केवल इतना मान कि रागद्वेष मोहको बढ़ा ना छोड़ अर्थात् घटावो तो अपना हित दौड़कर होवेगा अर्थात् सहजही होगा ॥

जीवअन्य तन अन्यहै अन्य सकल व्यवहार। तजपर पुद्गल जीव ग्रहु तो पावे भवपार ॥ ५४ ॥

हे आतमन जीव अन्य है शरीर अन्य है और सम्पूर्ण व्यवहार क्रिया भी अन्य हैं इससे पुद्गल को पररूप जान छोड़ो और जीव को निजरूप जान ग्रहण करो तो जन्मन मरनसे छूटोगे ॥

जो ना जानेजीव क्या जो न कहै है जीव। सो नास्तिक भव भ्रमेंगे जिनवर कहत सदीव ॥ ५५ ॥

जो मूर्ख यह नहीं जानते हैं कि जीव क्या है। अथवा जो कहते हैं कि जीव है ही नहीं सो नास्तिक न माननेवाले सदा संसार में भटकेंगे ऐसा सदा से जिनेंद्र कहते हैं ॥

रत्नदीप रवि दूध दधि घृत पत्थर

अरु हेम । रजत स्फटिक अग्निनव उदाहरण जिय एम ॥ ५६ ॥

रत्न, दीप, रवि, दूध, दधि, घृत, पत्थर, सुवर्ण, रजत, स्फटिक, अग्नि, ये नव दृष्टांतों कर जीव को पहिचानो यहां दूध दधि घृत एकमें लेना इसतरह जानो कि जैसे रत्नमें वा दीपकमें सूर्यमें प्रकाशक शक्ति है तैसे ही आत्मा में देखने जानने की शक्ति है और जैसे दूध दही में घृत छिपा है पर चिकनाई से जाना जाता है वा पत्थरमें अग्नि है सो टांकी लगाने से जानी जाती है तैसेही शरीर में आत्मा है सो देखन जानन क्रियासे जाना जाता है अथवा सुवर्ण चांदी खानसे मल सहित निकलतीहै तिनको शुद्ध करने से जानते हैं तैसेही शरीर में जीव है सो उपयोग से जानते हैं वह जीव स्फटिकसा निर्मल प्रकाशित और अग्निसा कर्म बन भस्म करने वाला है ॥

देहआत्मा भिन्नइम ज्यों सुवर्ण आकाश । पावे केवल ज्ञानजिय तब निज करे प्रकाश ॥ ५७ ॥

देह और आत्माभिन्न रहैं जैसे सुवर्ण अरु आका-

श भिन्न २ हैं जब जीव केवल ज्ञानको प्रकाश करता है तब प्रगट जाना जाता है ॥

यथा व्योम निर्लेप शुचि त्यों शुचि आत्म प्रदेश। परजड़ अम्बर आत्मा चेतनहै परमेश ॥ ५८ ॥

जैसे आकाश लेप रहित निर्मल शुद्ध है। तैसेही आत्मा उपाधि रहित शुद्ध है। परंतु आकाश अचेतन है और आत्मा चेतन्य है। परम ऐश्वर्य युक्त है

घ्राणदृष्टि अंतरलखे देह रहित जो जीव ॥ फिर न जन्मधर पय पिये शिवथल रहै सदीव ॥ ५९ ॥

जो नाशाग्र दृष्टि लगाकर आत्मध्यान कर शरीर के भीतर शरीर से भिन्न आत्मा को देखते हैं वे फिर२ जन्म धारण कर माता का दूध नहीं पीते हैं अर्थात् मुक्तहो सदा सिद्धालयमें रहते हैं ॥

ज्ञानमयी चेतन्यतन पुद्गलतन जड़जान। सुत दारादिक मोहतज शिव त्रियसे रति ठान ॥ ६० ॥

हे जीव तू चेतन्य है ज्ञानही तेरा शरीर है । यह पुद्गलीक शरीर जड़ज्ञान रहित है । इसलिये तू स्त्री पुत्रादि से ममत्व त्याग और मुक्ति स्त्री से प्रेम कर॥

आप आप अनुभव करे को फल सो न लहंत । केवलज्ञान उपायकर शिव रमणी विलसंत ॥ ६१ ॥

जो जीव आत्मरूपका अनुभव करता है वह कौन सा फलहै जिसको वह न पावे कारण कि जब आत्म अनुभव करनेवाला मोक्ष सुख पाताहै तो अन्य फल क्या वस्तु है ॥

जो परभावहि त्यागकर आत्म भाव लखंत । केवल ज्ञान सरूप हो सो भवना भटकंत ॥ ६२ ॥

जो जीव काम क्रोधादिक उपाधिक भावों को छोड़ कर निज ज्ञानादिक व क्षमादिक भावोंको देखता विचारता है । सो केवलज्ञान युक्त होकर मुक्त होता है फिर संसार में नहीं भटकता है ॥

भाग्यवान नर धन्यसो जिनत्यागे

परभाव। लोकालोक प्रकाशक:दे-
खा आतम राव ॥ ६३ ॥

हे जीव वह पुरुष धन्यहै भाग्यवानहै जिसने क्रो-
धादिक पर भावत्यागे हैं। और लोक अलोकका प्रका-
श करनेवाला है और आत्मरूप को जिसने देखाहै ॥

अनागार सागारजो बासकरें निज
रूप। शीघ्रमुक्ति सुख पावही यों
भाषत जिन भूप ॥ ६४ ॥

अनागारमुनि और सागार श्रावक जो अपने निज
रूपमे रत रहते हैं सो शीघ्रही मुक्ति सुख पाते हैं।
ऐसा जिनदेव ने कहा है ॥

विरला जाने तत्त्वको विरलातत्त्व
सुनंत। विरला ध्यावे तत्त्व को वि-
रला श्रद्धावंत ॥ ६५ ॥

थोड़ेही जीव तत्त्वसार को जानते हैं जीव अजीव
आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। और
थोड़ेजीवही तत्त्व सुनतेहैं। थोड़ेही जीव तत्त्वोंका विचार
करतेहैं और थोड़ेही जीव तत्त्वार्थका श्रद्धाण करतेहैं ॥

पुत्रादिक न कुटुम्ब मम विषय भोग दुःखखान । जो ज्ञानी इम चिंतवे सो छेदे भवथान ॥ ६६ ॥

ये पुत्रादिक कुटुम्ब मेरे नहीं हैं । कर्म संयोग से सराय में पथिकों की भांति कुछ कालको एकत्र हुए हैं और मुक्तिमार्ग में बाधा डालने वाले हैं ॥ और इंद्रियों के विषय भोग हैं सो दुःखकी खानि हैं इन से दुःख उत्पन्न होता है। जो बुद्धिवान ऐसा विचार करता सो भवका स्थानकर्म तिसको काटताहै ॥

इन्द्र फनीन्द्र नरेन्द्र ये जिय न शरण दातार । आतमको आतम शरण बुधमुनि करत विचार ॥ ६७ ॥

देवोंके इंद्र भवन वासीन के इंद्र और मनुष्योंके इंद्र (राजा) ये आत्मा को कोई भी शरण दाता नहीं अर्थात् मरने से नहीं बचा सकते हैं कारण कि वे सब आयुबीते आपही नहीं बच सकते तो औरों को क्या बचावेंगे । इससे आत्म को अपनाही शरण है अर्थात् मोक्षमार्ग में प्रवर्ते तो मोक्षपावे तब अ-

व्याबाध अविनाशी होजावे । ऐसा बुद्धिवान मुनि विचार करते हैं मूर्ख क्या जाने ॥

जन्म मरण इकला करे दुःखसुख भोगे एक। दुर्गति शिवपद एकले यहदृढ़ करो विवेक॥ ६८ ॥

हेजीव यह आत्मा एकलाही जन्मे है । एकलाही मरता है । एकलाही दुःख तथा सुख भोगता है। और दुर्गति नरकादि व मोक्षपद एकलाही पावे है ऐसा निश्चय दृढ़ विचार करो ममताजाल में न फंसो॥

जन्म मरण इकलाकरे यह लख तज परभाव । ध्यावो अपने रूपको शीघ्र बनो शिवराव ॥ ६९ ॥

हेजीव यह आत्मा एकलाही जन्मता है एकला ही मरता है । यह देखकर परभावों का त्यागकर और अपने रूपका ध्यानकर तो शीघ्रही मुक्ति का स्वामी सिद्ध बने ॥

पापहिपाप रु पुण्यको पुण्यकहत सब लोइ। कहे पुण्यको पाप जो बिरला पंडित कोइ ॥ ७० ॥

पापको पाप और पुण्यको पुण्य सब लोग कहते हैं इसका आशय यह है कि पापसे दुर्गति दुःख होते हैं । और पुण्यसे शुभगति सुख होते हैं सो संसार रत ऐसे जीवोंका विचार है जो देव मनुष्यों के पराधीन क्षण भंगुर सुख को ही सांचा सुख मानते हैं इसी से पुण्य को पाप कहनेवाले कोई बिरलेही पंडित जानकार हैं । जिनका ऐसा बिचारहै कि पुण्य से स्वर्गादि में जो सुखाभास होताहै उसमें जीव ऐसा भोगांध होजाता है कि फिर चिरकाल एकेंद्री जोनि में भ्रमण करता है दुःखी मनुष्य तो दुःख से डरकेमुक्ति मार्ग का खोज भी करता है परंतु सुखाभास वाला मुक्ति मार्गको ज़हरसा देखता है इससे पाप की अपेक्षा पुण्यही अधिक दुःख दाता है परंतु ऐसा जानने वाले पंडित थोड़ेही हैं कि जो पुण्य को दृढ़ बंधन जान पाप कहते हैं ॥

जैसी बेड़ी लोहकी त्यों सोनेकी जान । बुरी भली निश्चय करें सो न सुधी अज्ञान ॥ ७१ ॥

जैसे लोहकी बेड़ी गमन में बाधा करती है शीत में ठंडी और गर्मी में गर्म हो दुःख देती है शरीर में

छिदती और निर्बल करती है तैसेही सोने की बेड़ी गमन में बाधा डालती शीत में ठंडी और गर्मी में गर्म हो कष्ट देती है। शरीर में छिदती और निर्बल करती है वरन चोर डाकुओं से प्राण लिवाती है इनमें जो बुरी भलीकी कल्पना निश्चय करते हैं सो बुद्धि-वान नहीं अज्ञान हैं कारण कि सुवर्ण को बहुमूल्य रूपवान जान भला कहना और लोहेको अल्प मूल्य कुरूप जान बुरा कहना सो अज्ञानताहै भला तो सुख दाता को और बुरा दुःख दाता को समझना चाहिये ऐसेही पुण्यको सोनेकी बेड़ी और पाप को लोह की बेड़ी जानो दोनों भव में रोकते हैं॥

हेजिय जो निर्ग्रंथ मन तो तूभी निर्ग्रंथ। रागादिक मल त्यागसे पा-वेगा शिवपंथ॥ ७२॥

हेजीव जो तेरा मन संसार से उदास वीतराग है परिग्रह से ममत्व रहित है तो तू निर्ग्रंथ (परिग्रहर-हित) हीहै। राग (चारप्रकार माया चारप्रकार लोभ हास्यरति और स्त्री वेद पुरुषवेद नपुंसक वेद) आदि कहने से द्वेष (चारप्रकार क्रोध चारप्रकार मान अ-

रति शोक भय ग्लानि) और मोह (मिथ्यात्व मिश्र मिथ्यात्व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व) ये सब अंतरंग परिग्रह हैं तिनसे रहित है तब वाह्य परिग्रह कुछ नहीं कर सकते विरक्त के सुवर्ण काच दोनों समान हैं किसी से प्रीति वैर नहीं है इससे हे जीव रागादिक के त्याग से तू अवश्य ही मोक्षमार्ग पावेगा ॥

यथा बीजमें बड़ प्रगट बड़में बीज सुजान। तथा देहमें जीवहै अनुभव से पहिचान ॥ ७३ ॥

हेजीव जैसे बीज में वड़ प्रगट है बीज तोड़ने से नहीं दीखता परंतु वोनेसे वृक्ष उपजकर प्रत्यक्ष हो-जाता है। तैसेही बड़ में समय पाय फलने पर वीज प्रगट होजाते हैं। तैसेही शरीर में आत्मा है सो ज्ञान दर्शन उपयोग कर व चेतना लक्षण से जाना जाताहै शरीर चीरने फाड़नेसे दृष्टिमें नहीं आता अनुभव गम्यहै

यथाजीव परमात्मा तैसा मैं ना अन्य। यन्त्र मन्त्र से शिवनहीं यों निश्चय सो धन्य ॥ ७४ ॥

जैसा परमात्मा असंख्यात प्रदेशी चेतन्य लक्षण वाला जीव है ॥ तैसाही मैं हूं अन्य प्रकार नहीं हूं यंत्र से मंत्र से मोक्ष नहीं होती है। जिनको ऐसा दृढ़ श्रद्धाण है सो ही धन्य हैं ॥

दोत्रय चार रु पांच नव सप्त छ पंच रु चार। गुणयुत सो परमात्मा इनलक्षण युतसार ॥ ७५ ॥

जो रागद्वेष रहित दर्शनोपयोग सहित होवे तथा रागद्वेष मोह वर्जित सम्यक श्रद्धाण ज्ञान आचरण (सम्यक्रत्नत्रय) सहित होवे फिर क्रोधमान माया लोभ चार कषाय रहित, दर्शन ज्ञानचारित्र तपचार आराधना सहित होवे। फिर हिंसा मृषा चोरी कुशील परिग्रह पंचपाप रहित और पंचमहाव्रत का धारक होवे। फिर हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि, और तीनों वेद ऐसे नव नौ कषाय रहित और क्षायक दर्शन क्षायक ज्ञान क्षायक सम्यक्त्व क्षायक चारित्र क्षायक दान क्षायक लाभ क्षायक भोग क्षायक उपभोग क्षायक वीर्य का धारक होवे। फिर जूवा चोरी मांस मदिरा शिकार। वेश्या परस्त्री सेवन इनसात दुर्वि-

सनोसे रहित और सप्तशील (तीन गुणव्रत चार शि-
क्षा व्रत) काधारक होवे षटकाय की हिन्सा से रहित
और पंचेंद्रिय मनको रोकने वाला होवे। पंच परा
वर्तनसे रहित और पंचम गति का जाने वाला होवे
फिर चतुर्गति के जन्मन मरण से रहित अनंत चतु
ष्टय सहितहोवे। ऐसे लक्षण युत आत्मा सो परमा-
त्मा पद पानेका अधिकारी है॥

**दो त्यागी दो गुण सहित जो आ-
त्म रसलीन। जिनवर भाषें सोलहै
मुक्ति कर्मकर क्षीण॥ ७६॥**

राग द्वेष दो का त्यागी दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग
सहित और आत्मरस में मग्न ऐसा आत्मा कर्मोंको
क्षयकर मुक्ति पाताहै ऐसा जिनेंद्र कहते हैं॥

**तीन रहित त्रयगुण सहित स्वात्म
करे निवास। सोपावे सुख सास्वता
जिनवर कहत प्रकाश॥ ७७॥**

राग द्वेष मोह इन तीनसे रहित और सम्यग्दर्शन
सम्यग्ज्ञान सम्यक चारित्र इनतीनकर सहितहैं और

आतम रूपमें प्रवृत्ति करतेहैं सोही सस्वता अविना-शी सुख पातेहैं ऐसा प्रगट कर जिनवाणी कहती है॥

चार कषाय रहित सहित अनन्त चतुष्टय सार। स्वात्म में जो रचरहा सो पवित्र अविकार॥ ७८॥

जो क्रोध मान माया लोभ इन चार कषायोंसे रहित हैं और अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य इन चारकर सहित हैं सोही सर्व विकार भाव रहित पवित्र हैं॥

संगरहित दश सहित दश लक्षण दशगुण युक्त। सोही निश्चय आ-त्मा होइ जगति से मुक्त॥ ७९॥

खेत बाटिका आदि क्षेत्र १ घर दूकानादि वास्तु २ हिरण्य ३ सुवर्ण ४ में रोकड़ और भूषणादि जानो ऐसे ३। ४ धन चौपाये ५ धान्य खेतमें उपजे अन्नादि ६ दास (सेवक) ७दासी (लौंड़ी) ८ भांड (बर्तन) ९ कूप्य (वस्त्र) १० यह दशप्रकार बाह्य परिग्रह (संग) से रहित और उत्तम क्षमा १ उत्तम

मार्दव २ उत्तम आर्यव ३ उत्तम सत्य ४ उत्तम शौ-च्य ५ उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिंचन ९ उत्तम ब्रह्मचर्य १० येदश लक्षण धर्म सहित सोही भये १० गुण तिन सहित आत्मा सोही निश्चय मुक्त होता है ॥

आत्म दर्शन ज्ञानमय आत्मचा-रित्रवान । आत्म संयम शीलतप आत्म ः त्याग्ध्यान ॥ ८० ॥

देखने जानने आचरण करने वाला आत्माही है तैसेही संयम शील तप और त्याग (दान) करनेवाला आत्माही है अन्य जड़ पदार्थ नहीं हैं ॥

जो पहिचाने आपपर सो निश्चय परत्याग । सोहीहै सन्यासवर भाषें जिन बड़भाग ॥ ८१ ॥

जो आत्म अनात्म रूपको भले प्रकार जान निज रूपमें लीन होता है सोही निश्चय नयकर पर जो जड़ शरीरादि तिनका त्यागी है ॥ सोही उत्तम सन्यास है । ऐसा भाग्यवान जिनेंद्र देव ने कहा है ॥

सम्यग्दर्शन है यही आतम विमल श्रद्धाण। फिर फिर ध्यावे आत्महि सो शुचि चारित्र जान ॥ ८२ ॥

हे जीव आतम रूपका भले प्रकार जानना श्रद्धाण करना सोही सम्यग्दर्शन है। और वारंबार आतमस्वरूपका ध्यान करना सोहीशुद्ध स्वरूपाचरण चारित्रहै

रत्नत्रय युत आतमा वरतीर्थ शिव हेतु। तंत्र मंत्र शिव हेतुना एक न मुनि शिव देतु ॥ ८३ ॥

सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इनतीनरत्न संयुक्त आतमा है सो बंदन स्तवन योग्य श्रेष्ठ तीर्थहै। सोही मोक्षका कारण है आप मुक्तहोगा और दूसरों को धर्मोपदेशदे मोक्ष मार्गमें लगावेगा। और हे मुनि तंत्र मंत्र मोक्षके हेतु नहीं हैं न मोक्ष देतेहैं केवल लोक रिझाने को विडम्बना हैं ॥

जहां जीव तहां सकल गुण कहतकेवली एम। प्रगट स्वानुभव आपका निर्मल करो सप्रेम ॥ ८४ ॥

हे जीव जहां आत्मा है तहांही सर्व ज्ञानादि गुण हैं जड़ पदार्थों में नहीं हैं ऐसे केवल ज्ञानी सर्वज्ञ कहते हैं इससे प्रत्यक्ष अपने आत्माका अनुभव शुद्ध चित्त लगाकर करो ॥

एकाकी इंद्रिय रहित मन बचतन कर शुद्ध । स्वात्मका अनुभव करे शीघ्र लहे शिव बुद्ध ॥ ८५ ॥

हे जीव एकान्त में इंद्रियों के बिषयोंको रोक कर मन बचन शरीरको शुद्धकर अपने आत्माका बिचार करे तो बुद्धिवान शीघ्रही मोक्ष पावे ॥

बन्ध मोक्षकी भ्रांतिसे बंधे जीव के कर्म । सहज रमे निज रूपमें तो पावे शिव शर्म ॥ ८६ ॥

बन्ध और मोक्षका यथार्थ सरूप बिना भासे भ्रांति से जीवों के कर्म बन्ध होता है ॥ और जो निज रूप में रमन करे तो सहजही मोक्ष सुख पावे ॥

सम्यग्दृष्टी जीवका दुर्गति गमन

नहोइ। पूर्व बन्ध बश जायतो सम्य
क् दोष न कोइ॥ ८७॥

हे जीव सम्यग्दृष्टी आत्माका नर्क तिर्यंच कुगातियों में जन्म नहीं होता है और यदि मिथ्यात्व अवस्था में पहिलेही बंध होचुका होवे और पीछे सम्यक् श्रद्धाण हुआ होवे तो दुर्गति गमन होगा सो सम्यक्त्वका दोष नहीं है॥

निज स्वरूपमें जो रमे त्याग सर्व
व्यवहार। सम्यग्दृष्टी होइसो शीघ्र
लहे भव पार॥ ८८॥

हे आत्मन् जो जीव समस्त कुलाचार व्यवहार धर्मोंको त्यागकर आत्म स्वरूपमें लीन होताहै सोही सम्यग्दृष्टी होकर शीघ्र जन्म जन्मन मरणसे छूटताहै

अजर अमर गुणाका निलय सम्य
क् श्रद्धावान। करे न बन्ध नवीनवि-
धि पूर्व निर्जरा ठान॥ ८९॥

हे जीव! जो जीव सम्यक् श्रद्धाणीहै सो अजर अ-मर गुणोंका घरहै। सो कर्मोंका नवीन बन्ध नहीं कर

ताहै पूर्व बंधे कर्मोंकी निर्जराही करताहै भावार्थ क्रम शः निर्जरा कर मोक्ष पाता है ॥

जो सम्यक्त्व प्रधान नरसो ज्ञानी धीमान । सो प्रधान त्रैलोक मेंसा-स्वत सुक्ख निधान ॥ ६० ॥

हे आत्मन्! जिन जीवोंके सम्यग्दर्शन मुख्यहै सो ही बुद्धिवान सम्यग्ज्ञानी हैं और सोही ऊर्ध्व अधः मध्य तीनों लोकोंमें प्रधान हैं । और अविनाशी जो मुक्त सुख तिसके भंडार हैं ॥

ज्यों जल लिप्त नहो कमल तैसे सम्यक्वान । लिप्त न होवे कर्ममल स्वात्म दृढ श्रद्धाण ॥ ६१ ॥

हे आत्मन! जैसे कमल जलमें रहने परभी जलसे लिप्त नहीं होता है । तैसेही सम्यक श्रद्धाणी जीवघरमें बास करते भी कर्म मलसे लिप्त नहीं होते हैं जिनके कि निज रूपका दृढ़ श्रद्धाण है ॥

जो समता रस लीनहो फिर फिर करता भ्यास । अखिल कर्म सो छय करे पावे शिवपुर बास ॥ ६२ ॥

हे आत्मन्! जो जीव समता रसमें मग्न होकर बारंबार निज स्वरूपका अभ्यास करता है सो समस्त कर्मोंको नाशकर मुक्त नगरका राजा होता है॥

पुरुषाकार पवित्र अति देखे आत्म रूप। सो पवित्र हो शिवलहे होवे त्रिभुवन भूप॥ ९३॥

हे आत्मन्! जो जीव पुरुषके आकार कर्म मलसे रहित सिद्ध सुरूपके समान शक्ति अपेक्षा निजरूपको देखता बिचारता है सो समस्त कर्म कलंकसे रहित पवित्र होकर तीन लोक कर पूज्य सिद्ध होता है॥

अशुचि देहसे भिन्न निज शुद्धलखे चिद्रूप। सो ज्ञाता सब शास्त्रका पावे सुक्ख अनूप॥ ९४॥

हे आत्मन्! यह देह रज वीर्यसे उपजी हाड़ मांस मेद मज्जा रक्तसे बनी नशाजाल चामसे मढ़ी मल मूत्रादि से भरी महा अशुचिहै इससे भिन्न शुद्ध आत्मा का जो अनुभव करता है वही सर्व शास्त्रों का जानने वाला है। सो ही उपमा रहित मुक्तिसुख पावेगा॥

स्व पर रूप जाने न जो नहीं तजे परभाव। सकल शास्त्र जाने तदपि मिटे न भवभटकाव॥ ९५॥

हे आत्मन् जो अपनारूप और पररूप भिन्न २ लक्षणोंसे भिन्न२ नहीं जानता है। काम क्रोधादि उपाधिक भाव अहंकार ममकार परभावोंको नहीं छोड़ता है। सो सम्पूर्णशास्त्र पढ़ने परभी जन्मन मरण रूपभव भ्रमण से नहीं छूटेगा॥

तजके बिकल्प जालजो परम समाधि लहाय। आत्म सुख अनुभव करे लहैमोक्ष सुख जाय॥ ९६॥

हे आत्मन्! जो नाना प्रकारके संकल्प विकलपरूप जालको छोड़कर उत्कृष्ट समताभाव कर आत्म सुख का अनुभवकरताहै सो अवश्यही मोक्षसुखपाताहै॥

जो पिंडस्थ पदस्थ अरु रूपस्थ रूपातीत। जिन भाषित येध्यानचतु ध्यावो शुचिकर मीत॥ ९७॥

हे आत्मन्! जो पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ रूपातीत ये चार प्रकार ध्यान जिनेंद्र देवने कहेहैं सो मित्र निर्मल चित्तकर ध्यावो॥

सर्व जीवहैं ज्ञानमय जाने समता धार। सो सामायक जिनकहो प्रगट करे भवपार॥ ६८॥

हे आत्मन्! जो सर्व जीवों को ज्ञान सरूप समता भाव धारण कर जानता है किसीकी विराधना नहीं करताहै सोही जिनेंद्रने सामायक कहा है सो प्रत्यक्ष जन्मन मरण से छुटाता है॥

रागद्वेषजो त्यागकर धारे समता भाव। सामायक चारित्रसो तीर्थपति दर्शाव॥ ६९॥

हे आत्मन् जो रागद्वेष छोड़कर समता भावों को धारण करता है तिसको तीर्थंकर देवने सामायक चारित्र कहा है॥

हिन्सादिक तज निजरमे चारित्र

दूजोसोइ। छेदोपस्थापन कहोशिव पथ कारण लोइ॥ १०० ॥

हे आत्मन् हिंसादिक पापों को छोड़कर जो अपने स्वरूपमें रमन करतेहैं सो छेदोपस्थापन नाम दूसरा चारित्र मोक्षमार्ग का कारण लोक में कहा है॥

तज मिथ्यात्त्वमल जोधरे सम्यग्दर्शनशुद्ध। सो परिहार विशुद्ध है धरे लहैशिव बुद्ध॥ १०१ ॥

हे आत्मन् जो मिथ्यात्व मलको त्याग करके शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करता है सोही परिहार विशुद्ध संयम है इसको धरनेवाला बुद्धिवान सिद्धपद पाताहै

सूक्ष्मलोभके नाशसे शुद्ध होय परणाम। सोसूक्ष्म चारित्रहै सास्वतः सुखधाम॥ १०२ ॥

सूक्ष्मलोभ के नाशसे परणाम शुद्ध होते हैं सोही सूक्ष्म चारित्र है अविनाशी सुखका घर है॥

अरिहंत सिद्धाचार्य अरु उपाध्याय

सब साधु। ये पदहैं व्यवहारमें नियत आत्माराधु॥ १०३॥

हे आत्मन्! अरिहंत सिद्ध आचार्य, और सर्वसाधु ये पंचपद व्यवहार में ध्यावने योग्य हैं और निश्चय नयकर आत्माही आराधन योग्यहै सो उसीको आराध

सो शिवशंकर विष्णु सो रुद्र बुद्ध जिनदेव। ईश्वर ब्रह्मा सिद्धसो आत्म नाम गुणभेव॥ १०४॥

हे आत्मन्! कर्मजनित उपद्रवके मुक्त होने से सो ही आत्मा शिव है। और जीवोंका कल्याण करने से सोही आत्मा शंकर है। और त्रैलोकव्यापी केवल ज्ञानमय होनेसे वही आत्मा विष्णु है। और कर्मशत्रु को नाश करने से वही आत्मा रुद्र है। और सर्व विद्या सम्पन्न होने से वही आत्मा बुद्ध है और कर्म शत्रुओंके जीतने से वही आत्मा जिनदेव है। और रागादि अठारह दोष रहित छालीस गुण सहित समोशरणादि विभूति युक्त होनेसे वही आत्मा ईश्वर है द्वादशांग वांणीके प्रकाशनेसे वही आत्मा ब्रह्माहै।

और कृत्यकृत्य पनेसे वही आत्मा सिद्ध है ऐसे गुण भेदकर आत्माके अनेक नाम हैं ॥

इनलक्षण युक्तात्मा निकल करे तनबास । वहीशुद्ध परमात्मा दूजा भेद न तास ॥ १०५ ॥

ऊपरकहेहुए लक्षणोंसे युक्त शरीररहित आत्माहै सो शरीर में रहता है अर्थात् आत्मा जड़ नहीं है पर जड़ में बास करता है फिर वहीकर्म मल रहित शुद्ध परमात्मा होता है इसमें कुछ भेद दूसरा नहीं है ॥

जो सीजे जो सीजते जो सीजेंगे और । सो सब सम्यग्दृष्टिहो भ्रांति रहित करगौर ॥ १०६ ॥

हे आत्मन् ! जो आत्मा मुक्त हुएहैं वा होते हैं तथा होवेंगे । सोसब सम्यग्दर्शन ग्रहणकर मुक्तहुएहैं ऐसा भ्रांति रहित ध्यान देकर जानो ॥

भव भटकन से भीतहो योगींद्रसु मुनिराज । प्राकृत दोहोंमें रचो निज सम्बोधन काज ॥ १०७ ॥

संसार में बारंबार जन्मन मरण के दुःखों से डरकर योगींद्रदेव मुनिने अपने सम्बोधन व अभ्यास के लिये प्राकृत दोहों में रचना किया ॥

तिन गुरु चरण सरोजनमि भाषा दोहा कीन। लघुमति नाथूराम ने लखि तिस आशयपीन॥ १०८ ॥

तिन योगींद्रदेव गुरुके चरणकमलों को नमस्कार कर भाषा दोहोंमें किया। अल्पबुद्धि मुन्शी नाथूराम ने तिस ग्रंथ का कठिन आशयजान भाषा दोहों में टीका सहित रचना किया॥

चैत्र शुक्ल ग्यारसि सुभग भृगु-बासरशुभचीन। छप्पनयुत उनईश शत ग्रंथ समाप्ताकीन॥ १०९ ॥

चैत्रसुदी ११ शुक्रबार सम्बत् १९५६ को ग्रंथ समाप्त किया ॥

इतिश्री योगींद्रदेव कृत योगसार प्राकृत दोहाग्रंथ का उन्था स्वानुभव दर्पण नाम शुभम्भूयात् सम्पूर्णम् ॥

॥ सूचना ॥

हमारी छपवाईहुई निम्न लिखितपुस्तकें जो जैनीभाई खरीदेंगे उनकोनीचे लिखे अनुसार कमीशन पर मिलेंगी ॥।) तक तो टिकट भेजनेपर भेजीजावेंगी कमीशनमें हम डाक टिकट अपना लगा देवेंगे फिर २) पर वेल्यूपेविल भेजेंगे उसमें डाक मनीआर्डर दोनों खर्च माफ देकर भेजेंगे आगे ५) तक खर्च माफ के सिवाय ।-) रुपया कमीशन देवेंगे फिर १०) तक खर्च माफ के सिवाय ≠) रुपया कमीशन देवेंगे और जो भाई दान को वा पाठशाला को वा वेचनेको २५) की वा ऊपर मगावेंगे उनको खर्च माफके सिवाय ।) रुपया कमीशन मिलेगा और एकही किस्मकी सौ दोसौ मगावेंगे उन्हें निखर्चीदेंढ़ी और देने से दूनी मिलेंगी ॥

॥ हमारी छपाई हुई ये पुस्तकें हैं ॥

॥≈) भाषा पूजन संग्रह १३ पूजन ३ विधान ॥

।) जैन प्रथम पुस्तक जिसमें अनेक शास्त्रों का सार है

॥) जैन द्वितिय पुस्तक जिसमें विस्तार से अनेक शास्त्रोंका सार है ॥

≡) तत्त्वार्थ सूत्र मूल पुस्ट

-)॥ पंचकल्याणमंगल

-) पंचपरमेष्ठी मंगल

।-) ज्ञानानन्द रत्नाकर प्रथमभाग लावनी भजन

≠)॥ छःढाला सटीक द्यानति कृत

≡) छःढाला सटीक बुधजनकृत

।≈) जैन व्रतकथा ६ रत्न

-)॥ आलोचनापाठ सटीक

-)॥ बाईस परीषह योगीरासा

।≈) शीलकथा चौपाई बंध पुस्टाक्षर

।) स्वानुभव दर्पण सटीक

≡) सज्जन चित्त वल्लभ सटीक

इनके सिवाय बाहरकी छपी जैन पुस्तकें अनेक प्रकारकी हैं
उनपर सिर्फ खर्च माफ रहेगा

द० मुन्शी नाथूराम